अपने ही देश में अजनबी होने का दंश

डॉ.बन्ना राम मीना,

असिस्टेंट प्रोफेसर,
पीजीडीएवी कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय

उदारीकरण के दौर में प्राकृतिक संसाधनों की लूट व उनको प्राईवेट कंपनी के हाथों मे बेचने का सिलसिला तेज हुआ है। प्राकृतिक संसाधनों को हड़पने का मतलब आदिवासी समाजों को उनके जल जंगल और जमीन से बेदखल करना है। उदारीकरण से बदली हुई व्यवस्था ने बहुराष्ट्रीय कपंनियों के लिए आदिवासियों द्वारा हजारों सालों से संरक्षित प्राकृतिक संसाधनों के दोहन का द्वार खोल दिया। दो दशकों से आदिवासियों से उनके देवता समान पूजनीय पर्वत ,पठार,नदियाँ, झरने, जंगल लगातार छीने जा रहे हैं। जब वे इसका विरोध करते है तो उन्हें नक्सली करार देकर मारा जा रहा है। इससे मुल्क में नये संघर्ष उठ खड़े हो रहे हैं। सिंगुर, नंदीग्राम, नगडी, पोस्को, नियमगिरी आदि प्राकृतिक संसाधनों की लूट की लम्बी सूची है। जिससे यह साबित होता है कि विकास के मॉडल में आदिवासी अनफिट हैं। ऐसे विकास के मॉडल के सबसे पहले शिकार आदिवासी समाज ही होता है। तथाकथित विकास के ऐसे मॉडल से आदिवासी समाज ने अपनी सामूहिक तथा ऐतिहासिक सांस्कृतिक विरासत भी खोई है। भोगवादी संस्कृति ने आदिवासी संस्कृति को 'विकृत' कर दिया तथा उनके अस्तित्व को भी नकार दिया। हजारों सालों से प्रकृति के सानिध्य में गुजर बसर कर रहे आदिवासी समाज की जमीन और जिन्दगी खतरे में है। आज यह समुदाय अपने ही देश में अजनबी होने का दंश झेल रहा है। आदिवासियों की लड़ाई प्रकृति और इस धरती को बचाने की है।

आदिवासी एक्टिविस्ट व लेखक ग्लैडसन डुंगडुंग लिखते है कि– "प्रकृति बचेगी तो धरती पर जीवन बचेगा। बड़े पैमाने पर किये गये औद्योगिकरण की वजह से धरती का तापमान लगातार बढ़ता जा रहा है। फलस्वरूप, जलवायु परिवर्तन ने धरती पर तबाही मचाने का संकेत दे दिया है। इसलिए जमीन, जंगल, पहाड़, जलस्रोत एवं अन्य प्राकृतिक सम्पदाओं को सुरक्षित रखने के लिए संघर्ष कर रहे दुनियाभर के आदिवासियों को विकास विरोधी, देशद्रोही, जंगली, असभ्य और पिछड़ा कहने के बजाय उनके संघर्षों में शामिल होकर प्रकृति, धरती और जीवन को बचाने में अपनी भूमिका निभाने की जरूरत है। "[1]

आज यह कड़ुआ सच बन चुका है कि प्रकृति के बगैर आधुनिक विकास स्थायी नहीं है बल्कि यह विनाश का कारण बनता जा रहा है। भविष्य के भारत में आदिवासियों के अधिकरों की रक्षा के लिए वन अधिकार कानून, पेसा कानून एवं भूमि सुरक्षा संबंधी कई अच्छे कानून हैं और संवैधानिक प्रावधान भी है, जिन्हें जमीन पर हू–ब–हू लागू करने से आदिवासी जमीन, इलाका और प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा सुनिश्चित हो जायेगी। इसलिए इन कानूनों और संवैधानिक प्रावधानों को जमीन पर सख्ती से लागू करने की जरूरत है।

"विकास के नामपर पेड़ों को काटने, जंगलों को उजाड़ने और पहाड़ों को बेचकर पूंजीपति, सत्ताधीश और नौकशाहों का खजाना भरने के लिए हमारे दिमाग में यह डाल दिया

गया है कि विकास करने के लिए प्राकृतिक संसाधनों का दोहन जरूरी है। देश में ऐसी मान्यता स्थापित कर दी गई है कि विकास करने के लिए पेड़ों को काटना, जंगलों को उजाड़ना और पहाड़ों को बर्बाद करना जरूरी है। इतना ही नहीं प्रकृति के साथ जीने वाले आदिवासियों को असभ्य, जंगली और पिछड़ा कहा जाता है तथा जो लोग कांक्रीट के जंगलों में रहते हैं उन्हें सभ्य, शिक्षित और विकसित। इसलिए बहुसंख्य लोग पेड़ काटने, जंगल उजाड़ने और पहाड़ों को तोड़ने पर सवाल नहीं उठाते हैं और पर्यावरण पर होने वाले असर के बारे में भी बात नहीं करते हैं। जबकि हकीकत यह है कि विकास के नामपर प्राकृतिक संसाधनों का बेहिस्साब दोहन हो रहा है। देश के जिन आदिवासी बहुल क्षेत्रों से अरबों रूपये का लौह–अयस्क, बाक्साईट, कोयला, इत्यादि निकाला जा रहा है उन क्षेत्र के लोगों को अपनी आजीविका के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है और जंगल भी खत्म हो रहा है।"[2]

विकास के नाम पर जंगलों को उजाड़ने का आंकड़ा भयावह है। "1980 से 2018 तक विकास के नामपर 26,194 परियोजनाओं के लिए 15,10,055.5 हेक्टेयर जंगलों को उजाड़ा गया है। इसमें सबसे ज्यादा आश्चर्य करने वाली बात यह है कि पर्यावरण संरक्षण के लिए संयुक्त राष्ट्र से ''चौम्पियन आफ अर्थ'' पुरस्कार जीतने वाले भारत में 2014 से 2018 तक 2,347 परियोजनाओं के लिए 57,864.466 हेक्टेयर जंगलों को विकास नामक दानव के हवाले कर दिया गया। इतना ही नहीं 2019 में अबतक 954 परियोजनाओं के लिए 9,383.655 हेक्टेयर जंगलों को विकास की बली बेदी पर चढ़ाया जा चुका है एवं अभी और कई जंगलों और पहाड़ों को विकास के नामपर उजाड़ने की तैयारी चल रही है। भारत सरकार का 'वन, पर्यावरण एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय' देश में मौजूद जंगलों और पहाड़ों को पूंजीपतियों को सौपने के लिए निरंतर प्रयासरत है।" 3

मौजूदा व्यवस्था आदिवासियों की बची–खुची जमीन को पूंजीपतियों को सौपने में लगी हुई है। आने वाले समय में आदिवासियों को भयंकर आर्थिक चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता है।पिछले दो दशकों से आदिवासी समाज उपरोक्त मुद्दों मसलों सवालों को लेकर सजग और सतर्क हो रहा है। आदिवासी एक्टिविस्ट लेखक पत्रकार सभी इस दिशा में सराहनीय काम कर रहे है। ग्लैडसन डुगंडुग, सुनील मिंज , वंदना टेंटें, महादेव टोप्पो, जसिंन्ता केरकेट्टा अपने लेखन के माध्यम से आदिवासी समाज के भीतर चेतना जगाने का काम कर रहे है। आज के आदिवासी समाज का एक प्रतिरोधी अतीत और संस्कृति के स्तर पर समृद्ध धरोहर हमारे सामने है।वैश्वीकरण के इस दौर में आदिवासी के सामने सबसे बड़ा सवाल उसके अस्तित्व का बन पड़ा है। उदारीकरण की नीतियों को अंधा–धुँध तरीकों से लागू किया, उसकी वजह से गरीबी ने 15 करोड़ लोगों को प्रभावित किया।इस जनसंख्या की एक तिहाई आबादी आदिवासी समाज रही है।जाहिर सी बात है कि देश की प्रगति, विकास और सभ्य समाज की सुविधाएँ आदिवासियों के अस्तित्व की कीमत पर जुटाए जा रहे हैं। लगभग दस करोड़ की आबादी वाला आदिवासी समाज जीवन की मूलभूत सुविधाओं के लिए तरस रहा हैं। अपनी जैविकता और भाषिक अस्मिता के लिए भी इन्हें जीने–मरने तक का संघर्ष करना पड़ रहा है। आदिवासी साहित्य के भीतर उन सवालों मुद्दों उठा रहे है, जो देश की राजनीति ,साहित्य और चिंतन के एजेंडे में होने चाहिए।

आज के दौर में विकास के नाम पर बड़ी बड़ी योजनाओं के निर्माण के लिए आदिवासी की जमीन छिनती जाने से आदिवासी बड़ी ही तीव्र गति से स्वावलंबी और स्वाभिमानी समुदाय की जगह भूमिहीन मजदूरों और वफादार घरेलू नौकर–नौकरानियों की बड़ी फौज के रूप में आधुनिक महानगरों की परिधियों में बसी स्थायी झुग्गी–झोंपड़ियों में दिखाई देते हैं।इनका जीवन

प्रस्तुत ढाँचे में फिट नहीं होता,क्योंकि उनके जीवन के कंडीशनिंग तत्व अलग हो गए हैं।व्यवहार में अब वे आदिवासी नहीं रह जाएँगे । इसलिए अगर हम सोचते है कि आदिवासीपन में दम है,तो उसके सराहनीय गुणों (सच्चाई, ईमानदारी, समता, सहयोग, जनतांत्रिकता, स्वावलंबिता आदि) को बचाना है और यदि उसकी रक्षा करनी है तो उसे उसकी जमीन पर से उखाड़ने से बचाना होगा।[4]

आदिवासियों की संस्कृति सिर्फ उनके नाचने, गाने, पारंपरिक वस्त्र पहनने भर में नहीं है। इनके बीच जो जीवन दर्शन और जीवन मूल्य है। वही इस संस्कृति की आत्मा है। मेरी समझ से राजनीतक चेतना भी आदिवासियों के इसी जीवन दर्शन में निहित है। ऐसी राजनीतिक चेतना जो किसी का हक मारने के बजाय प्रकृति की हर चीज का हक सुरक्षित रखने को प्रेरित करती है। पढ़े–लिखे आदिवासियों को अपने ही जीवन दर्शन में निहित सांस्कृतिक और राजनीतिक चेतना को समझना चाहिए। भीड़ और भेड़ बने रहने की अपनी स्थति के प्रति जागरूक होने से ही नए रास्ते नजर आएंगे। प्रकृति और मनुष्य के खिलाफ चलकर खुद को पोषित होने वाली राजनीतिक प्रवृति से उनका भला कभी नहीं हो सकता। यह समझना चाहिए कि उत्पीड़कों की उदारता भी उनकी अन्यायी व्यवस्था में ही पलकर बड़ी होती है।

"शहर के लोग जंगल में बाघ– भालू के नाम से डरते हैं, पर शहर में वे अपनी ही तरह के आदमी से डरते हैं। यह जंगल पहाड़ के जीवन से भी ज्यादा भयावह है। हम जंगलों में यह नहीं जानते कि आदमी से डरना क्या होता है। हमारी बच्चियां जंगलों में अकेली घूमती हैं। लड़के पेड़ों से शलप उतारते हैं। गांव में धांगड़ा, धांगड़ीबासा है, जहां युवा आपस में मिलते–जुलते, बातें करते हैं। पहाड़ों पर नदियां, झरने हैं। फल फूल हैं। तरह तरह के कंद मूल हैं। हमें भोजन, पानी की कमी नहीं है। वहीं, शहरों में लोग पानी बेच रहे हैं। पहाड़ ने हमें वह सबकुछ दिया है, जो सरकार भी शहर में सभी लोगो को समान रूप से दे नहीं पा रही। इसलिए हम खुद को गरीब नहीं मानते। हमारे लिए पहाड़ और जंगल सरकार से ज्यादा महत्वपूर्ण हैं। यहां हम हिंसा रहित जीवन जीते हैं। यहां स्त्रियां सुरक्षित हैं। यहां हमारी भाषा, संस्कृति सुरक्षित है। इसलिए हमारा जीवन भी शहरों में नहीं, यही इन्हीं नियमगिरि के जंगल– पहाड़ों पर सुरक्षित है। पहाड़ों के बचे रहने से ही हम बचेंगे। हमारे लड़ते रहने से ही ये पहाड़ बचेंगे। इसलिए हम इन्हें बचाने के लिए पीढ़ी दर पीढ़ी लड़ते आये हैं।नियमगिरि में किसी भी लड़की या स्त्री के साथ किसी तरह की जबरदस्ती, छेड़खानी या उसके अपमान की अनुमति किसी को नहीं है।बलात्कार की कुसंस्कृति सबसे घृणित माना जाती है। किसी भी तरह के संबंध के लिए स्त्री या लड़की की सहमति सबसे जरूरी है। लड़कियों को स्वतंत्रता है कि वे संबंध के लिए किसी लड़के को खुद पसंद कर लें। स्त्री पुरुष संबद्ध को समाज की इज्जत छिन जाने की तरह नहीं देखा जाता। इसलिए वे नहीं जानते कि स्त्रियों के साथ छेड़खानी, बलात्कार क्या होता है।"[5]

प्रकृति से गहरे जुड़े आदिवासी समुदाय का जीवन दर्शन कहता है कि प्रकृति में हर चीज अपनी जगह पर श्रेष्ठ और सुंदर है। हर चीज समग्रता का एक हिस्सा है और एक दूसरे से जुड़ा हुआ है। कोई भी चीज श्रेष्ठ इसलिए नहीं है क्योंकि वह दूसरों से संख्या, रंग, ताकत, बुद्धि, शिक्षा, पैसे, पहचान में बड़ा या बेहतर है। यही वजह है कि मुख्यधारा के प्रदूषण से बचे आदिवासी समुदायों के बीच आदमी के महिमा मंडन का कोई कॉन्सेप्ट नहीं है। यह समुदाय प्रकृति के साथ तालमेल बैठाकर उसके साहचर्य में अपना जीवन यापन कर रहा है।जल जगंल और जमीन को बचाने की लड़ाई लड रहा है।

हरिराम मीना के अनुसार 'सही मायने में धरती बिछौना और आसमान उनका ओढ़ना हैं।'[6]

कॉरपोरेट जगत लगातार आदिवासी समाज को उनके जल जगंल और जमीन से बेदखल कर रहा हैं। विस्थापित होने के बाद यह समाज अपने ही देश में अपने को अकेला पाता है। अब यहाँ सवाल उठ खड़ा होता है कि अमानवीय तरीके से जल, जंगल, जमीन से बेदखल करने के बाद कॉरपोरेट कंपनियां आदिवासियों को शिक्षा देने की जिम्मेदारी खुद के ऊपर क्यों नही लेती हैं ? ये आदिवासियों को विस्थापित होने के बाद वैकल्पिक व्यवस्था के बारे में क्यों नही सोचते? जाहिर सी बात है उनको आदिवासियों से कोई सरोकार नही है।मुनाफे की होड़ में ये उस समाज को अपनी जड़ों से बेदखल कर रही है।" सिर्फ विस्थापन के कारण ही आदिवासी उत्थान की सारी गतिविधियाँ बाधित हो जाती है।चाहे वह शिक्षा, स्वास्थ्य , पेयजल, सड़क , संचार, आवास और जीविकोपार्जन आदि किसी भी अहम मसलें से जुड़ी हुई क्यों न हो।"[7]

डॉ.फेलिक्स पैडेल ने कहा कि "आज पूरी दुनिया में आदिवासियों के पास मौजूद प्राकृतिक संसाधनों को लूटने की होड़ मची हुई है। एकवाडोर, कोलम्बिया, ब्राजील और पेरू की सरकार ने वहां के आदिवासियों को जंगलों से बेदखल करने की कोशिश में जुटी हुई हैं, तो वहीं भारत में भी आदिवासियों को वन एवं वन्य जीवन का दुश्मन बताकर उनसे अपनी जमीन, पारंपरिक बसाहट और जंगल छीनने का काम जारी है।"

पिछले दो दशकों आदिवासी बहुल ईलाकों में विकास के नाम पर जल जंगल और जमीनों से बेदखली का ऑकडा भयावह है। 1980 से लेकर 2019 तक विकास के नाम पर लूटपाट की संस्कृति ने काफी जोर पकड़ा है। इस दौरान विकास के नाम पर "26,194 परियोजनाओं के लिए 1510055.5 हैक्टेयर जंगलों" को उजाड़ा गया है।पूँजीपतियों को सौंपने के लिए अभी कई जल जंगल और जमीन को उजाड़ने की तैयारी चल रही है।इस प्रकार देश की विकास नीति ने जंगल–दर जंगल उजाड़ दिये।आज के समय में जंगल वहीं बचे हैं,जहाँ आदिवासी हैं और आदिवासी जंगल संरक्षण व नियंत्रण स्वयं कर रहे हैं।हमें आदिवासी समाज के जल जगंल और जमीन के संकटों के बारे में विचार करना चाहिए,ताकि भविष्य में वह अपने देश में अजनबी होने के दंश से बच सके।

संदर्भ सूची

1- आदिवासी हूंकार वेब पेज – ग्लैडसन डुंगडुंग 12 जून 2019

2- आदिवासी हुंकार वेब पेज – ग्लैडसन डुंगडुंग 12 जून 2019

3- आदिवासी हुंकार वेब पेज – ग्लैडसन डुंगडुंग 12 जून 2019

4- आदि धर्म – रामदयाल मुंडा, पृ.15

5- अपसंस्कृति से दूर है नियमगिरी–जसिंता केरकट्टा– 8 नवंबर 2019

6- क्या जंगलों को आदिवासी उजाड़ते है? (संकल्प,अक्टूबर 2010–11, हरिराम मीना,पृ.30

7- आदिवासी दुनिया – हरिराम मीना पृ.146